Vol.6 December 2012 No.6
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

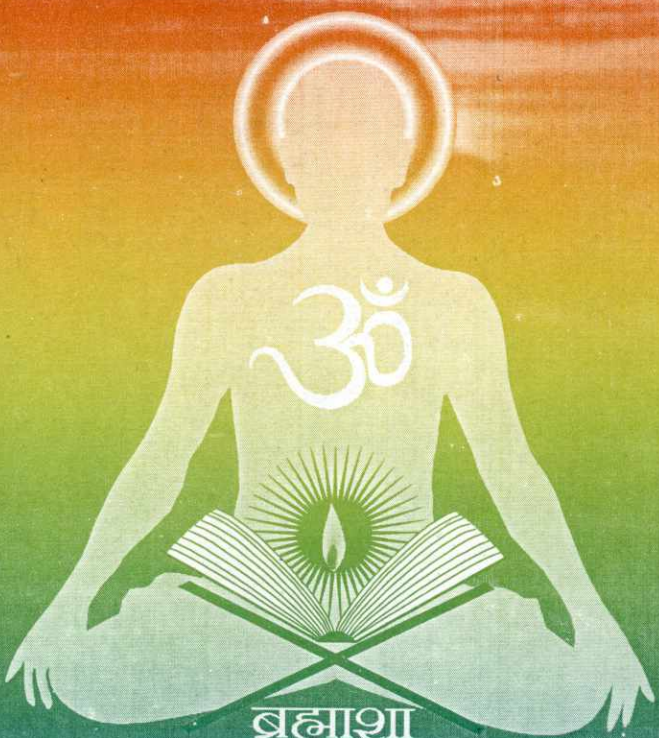

ब्रह्माशा

श्रद्धानन्द बलिदान विशेषांक

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति

–धर्मवीर शास्त्री

दो वही श्रद्धा हमें भी, दो अनोखी शान अपनी!
सिंह-गर्जन से तुम्हारे ही कभी नभ गूँजता था
वीरता ऐसी कि भय ही पग तुम्हारे पूजता था
छा गये थे तुम चतुर्दिक वेद का गौरव सुनाते
तर्जनाओं में तराने जीत के ही गुनगुनाते

तुम वही जो प्राणपण से थे निभाते आन अपनी।

प्राप्त की लघु साधनों से सिद्धियाँ तुमने अनूठी
क्या टिकी सम्मुख तुम्हारे दम्भ की दीवार झूठी
गुरुकुलों को जन्म यत्नों से तुम्हारे ही मिला था
धर्म का सर्वत्र शीतल चाँदना तुमसे खिला था

लोक हित में सम्पदा तुम कर चुके थे दान अपनी।

खून से अपने लिखा था क्रान्ति का इतिहास तुमने
भर दिया था जाति में नव आत्मबल-विश्वास तुमने
युद्ध में अन्यायियों से इस सदी के सव्यसाची
था तुम्हारा नाम साहस-सत्य का पर्यायवाची

आपदाओं में न खोते थे कभी मुस्कान अपनी।

कार्य में प्राचीन शिक्षादर्श को परिणत किया था
वेद, संस्कृत और संस्कृति को पुनः उन्नत किया था
शुद्धि का दे मन्त्र अरि-मुख कर दिया बन्द तुमने
दीं झुका संगीन छाती खोल श्रद्धानन्द तुमने

धर्म के हित अन्ततः दे ही गये तुम जान अपनी।

Brahmarpan December 2012 Vol. 6 No.6
मार्गशीर्ष-पौष 2069 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

CONTENTS

1. संपादकीय 2
2. सांख्य दर्शन 5
-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार
3. वर्तमान परिप्रेक्ष्य और स्वामी श्रद्धानंद
-स्व. क्षितीश वेदालंकार 6
4. पश्चिम से संस्कृत का परिचय कराने वाले : सर विलियम जोन्स
-भवानीलाल भारतीय 11
5. सत्यार्थप्रकाश : एक समाज-वैज्ञानिक दृष्टि 15
-डॉ. श्यामसिंह 'शशि'
6. युवा शक्ति 23
रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'
7. कैसे संभव है हिन्दू-मुस्लिम एकता
-भानुप्रताप शुक्ल 24
8. Battle of Rezang La 29
-Shekhar Gupta
9. Body Is The First Gift 32
-Sadhguru
10. Success Mantra
Adwaita Mohapatra
Back Cover Page

संपादकीय

साहस और श्रद्धा की मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द

महात्मा गाँधी ने जब 4 मार्च को रौलेट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह का आह्वान किया तो स्वामी श्रद्धानन्द उसे धार्मिक कर्तव्य मान कर उसमें पूरी श्रद्धा से कूद पड़े इस समय उनके पुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति और डॉ. अंसारी ने दिल्ली में सत्याग्रह का मोर्चा सँभाला। वहाँ स्वामी श्रद्धानंद ने विशाल जनसभा को संबोधित किया। इस आंदोलन को गति प्रदान करने के लिए उन्होंने मुम्बई, सूरत, अहमदाबाद आदि नगरों में विशाल जनसभाओं में भाषण दिए। इस दौरे के बाद जब वे दिल्ली लौटे तो आंदोलन कुछ ठंडा पड़ गया था। इसे फिर से गति देने के लिए उन्होंने तीन विशाल जनसभाओं को संबोधित किया और 30 मार्च को पूर्ण हड़ताल कराने की योजना बनाई।

दिल्ली में 30 मार्च को पूर्ण हड़ताल रही परन्तु फव्वारे के पास हलवाइयों के दुकानें बंद न करने के कारण पहले उनसे कुछ कहा-सुनी हो गई और फिर वहाँ दंगा हो गया। इस पर वहाँ तैनात सेना के सिपाहियों ने गोली चला दी जिसमें पाँच लोग मारे गए और कई घायल हो गए। गोली चलाने की खबर सुनते ही स्वामी श्रद्धानंद वहाँ गए। वहाँ से वे जनसमूह के साथ पीपल पार्क गए, जहाँ उन्होंने विशाल जनसभा को संबोधित किया। इसके बाद वे अपने घर नया बाजार लौट रहे थे। काफी भीड़ उनके साथ थी। तभी घंटाघर के पास उनका सामना दूसरी ओर से आ रही सेना की टुकड़ी से हुआ। भीड़ को देखकर एक सैनिक ने हवा में गोली चला दी। भीड़ उत्तेजित होकर सैनिकों की

ओर बढ़ी। स्वामी जी ने भीड़ से शान्त रहने को कहा और स्वयं सैनिकों की ओर बढ़े। उन्हें आगे बढ़ते देखकर उन्होंने अपनी संगीने उनकी ओर तान दीं। स्वामी जी ने शान्तभाव से अपनी छाती पर से भगवावस्त्र हटा दिया और गंभीर स्वर में कहा – 'क्यों? गोली चलाना चाहते हो तो चलाओ गोली।'

उन सैनिकों को हिन्दी नहीं आती थी इसलिए उन्होंने उसका अर्थ नहीं समझा, लेकिन चेष्टाओं से वे उनका भाव समझ गए। पर वे कुछ देर संशय में पड़े रहे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें तभी एक गोरा अफसर घोड़ा दौड़ाते हुए आया। उसने सैनिकों से अपनी संगीने नीचे करने को कहा। उसने स्वामी जी से बात की और सैनिकों ने भीड़ को जाने का रास्ता दे दिया। इस घटना ने लोगों के मन में स्वामी जी के लिए अत्यधिक श्रद्धा पैदा कर दी। देखते ही देखते इस घटना की खबर का पूरी दिल्ली को लग गई। इस विषय में बाद में स्वामी जी ने लिखा कि भीड़ बेकाबू हो चली थी और वह सैनिकों पर टूट पड़ने को तैयार थी। परन्तु मेरे हाथ के इशारे से और सत्याग्रह की शपथ को याद दिलाने पर सब शांत हो गए।

31 मार्च को एक सभा में 30 मार्च को शहीद हुए शहीदों को श्रद्धांजलि दी गई। वहाँ भी मुख्य भाषण स्वामी जी का था। 3 अप्रैल को एक घायल व्यक्ति की मौत हो गई जिसे 30 मार्च को गोली लगी थी। उसकी शोक सभा में स्वामी जी ने बड़ा मार्मिक भाषण दिया।

जामा मस्जिद में शहीदों की शोक सभा में बुलावा

अगले ही दिन 4 अप्रैल को जामा मस्जिद में शहीदों को दुआ दी गई। मस्जिद में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। नमाज के बाद भीड़ ने माँग की कि श्रद्धानंद को बुलाओ

वही तकरीर करें।

स्वामी जी को बुलाने के लिए उनके नेता गए। ताँगे से आने में कुछ देर हुई परन्तु भीड़ बिना श्रद्धानन्द की तकरीर सुने वहाँ से जाने को तैयार नहीं थी। स्वामी जी आए। गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी ने वेदमंत्र के उच्चारण के बाद तकरीर दी। लोगों ने उसे बड़े ध्यान से सुना।

6 अप्रैल को फिर पूर्ण हड़ताल हुई। उस दिन भी स्वामी श्रद्धानन्द ने सुबह फतहपुरी मस्जिद में और शाम को पार्क (सुभाष पार्क) में भाषण दिए।

स्वामी जी जो भी कार्य करते थे पूर्ण धार्मिक निष्ठा के साथ करते थे। उनके मन में किसी से शत्रुता की भावना नहीं थी इसीलिए उनसे जामा मस्जिद और फतहपुरी मस्जिद की धर्मपीठ से बोलने का अनुरोध किया गया। हिन्दू -मुस्लिम कलह से उन्हें दुःख होता था। इसके साथ ही वे शुद्धि का कार्य भी करते रहे। इसका उद्देश्य इस्लाम के विरुद्ध कार्य करना नहीं था। वे सच्चे हृदय से समझते थे कि इसमें मुसलमानों का भी हित है कि वे वैदिक धर्म ग्रहण कर लें। कट्टरपंथी मुसलमानों ने उनकी भावना को नहीं समझा। इसलिए कट्टरपंथी मुसलमानों के बहकावे में आकर अब्दुल रशीद ने स्वामी जी के आवास में आकर पानी का एक गिलास माँगा। जब उनका सेवक पानी लाने गया तो उसने स्वामी जी को गोली मार कर शहीद कर दिया। उनकी शव यात्रा में सभी धर्मों के इतने लोग शामिल हुए जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वह चिरस्मरणीय रहेगा। आज उनके बलिदान दिवस 23 दिसम्बर को हम उनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हैं।

भारतभूषण
संपादक

सांख्य दर्शन (अध्याय–1, सूत्र–61)

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

पिछले सूत्र में शिष्य ने प्रश्न किया था कि सांख्य ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं मानता तो ऐसी स्थिति में जगत् के उपादान के संबंध में सांख्य का क्या मत है? इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया गया है, सूत्र है:-

तत्सन्निधानात् अधिष्ठातृत्वं मणिवत्।।61।।

अर्थ - (तत्सन्निधानात्) प्रकृति के सन्निध्य से ईश्वर का (अधिष्ठातृत्वं) अधिष्ठाता होना सिद्ध होता है, (मणिवत्) मणि के समान।

भावार्थ- जगत् का मूल उपादान अचेतन प्रकृति है। प्रकृति में चेतन की प्रेरणा के बिना कोई भी प्रवृत्ति स्वतंत्र रूप से नहीं होती। सारे जगत् की सृष्टि और उसका संचलन चेतन नियन्ता ईश्वर द्वारा होता है। जैसे अयस्कान्तमणि (चुम्बक) से लोहे का साथ होने पर क्रिया (विशेष) उत्पन्न करता है, इसी तरह चेतन ईश्वर अपने सान्निध्य से सारी प्रकृति का संचालन करता है। प्रकृति में प्रत्येक क्रिया (विकार या परिणाम) चेतन की प्रेरणा से होता है जैसे मणि (चुंबक) में यह स्वाभाविक शक्ति होती है कि वह लोहे के टुकड़े को अपनी ओर खींचने की क्रिया करता है वैसे ही चेतन का भी यह स्वभाव है कि वह अचेतन को प्रेरित करे। इसी प्रकार अचेतन प्रकृति की प्रवृत्ति में चेतन का सान्निध्य (समीपता) निमित्त है। यही चेतन का अधिष्ठाता होना है, इसलिए चेतन ईश्वर जगत् का (उपादान) न होकर अचेतन उपादान प्रकृति में प्रवृत्ति का कारण होता है। सारे संसार का नियन्ता व अधिष्ठाता अल्पज्ञ तथा अल्पशक्ति आदि कमियों के कारण जीवात्मा नहीं हो सकता। इसलिए सांख्य में सारी प्रकृति के नियन्ता व अधिष्ठाता के रूप में चेतन ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि जड़ जगत् का मूल उपादान ईश्वर नहीं अपितु प्रकृति है। अतः भूत और भविष्यत् के सभी कार्य अपने मूल उपादान प्रकृति में कारण रूप में अवस्थित रह सकते हैं। और योगी योग की शक्ति के द्वारा प्रकृति के साथ संपर्क स्थापित करके भूत और भविष्यत् की वस्तुओं का प्रत्यक्ष कर लेता है, इसलिए प्रत्यक्ष के पूर्वोक्त लक्षण में अव्याप्ति दोष नहीं है।

सी–2ए, 16/90 जनकपुरी, नई दिल्ली–10058

वर्तमान परिप्रेक्ष्य और स्वामी श्रद्धानन्द

-स्व. क्षितीश वेदालंकार

यदि आज स्वामी श्रद्धानन्द होते तो देश की वर्तमान परिस्थिति से वे किस प्रकार निपटते यह एक काल्पनिक प्रश्न है। शायद इस प्रकार के काल्पनिक प्रश्न का समाधान खोजने में कोई व्यावहारिक और रचनात्मक पहलू न भी हो परन्तु जब तक मनुष्य में बुद्धि है, कल्पना शक्ति है वह इस प्रकार के ऊहापोह से बाज नहीं आ सकता। अतः मन में बार-बार यह प्रश्न अवश्य उठता है कि यदि आज अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जीवित होते तो वे क्या करते?

इस कल्पनात्मक प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमें यह सोचना होगा कि आज वे कौन-सी प्रमुख समस्याएँ हैं जिन्होंने जनमानस को उद्वेलित कर रखा है। सब उन समस्याओं का समाधान खोजना चाहते हैं, दिन-रात उस समाधान के लिये चिन्तातुर भी रहते हैं, परन्तु वह समाधान न नेताओं के पास है न जनता के पास। हमने नेता और जनता इन दोनों को एक साथ गिनाकर यह आभास दिया है कि कदाचित् दोनों एक ही कोटि में हैं परन्तु वस्तुतः ऐसी स्थिति है नहीं। नेता, नेता है और जनता, जनता है। एक जनता को अपने पीछे चलाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं और दूसरे जनता है जो नेताओं के पीछे न चाहते हुए भी चलने को विवश है। एक तरह से ये दोनों दो ध्रुवों पर विद्यमान हैं। नेता और जनता तथा प्राचीन परिभाषा के अनुसार राजा और प्रजा के सम्बन्ध में दो अवधारणायें प्रचलित हैं। एक धारणा पश्चिम की है और दूसरी धारणा पूरब की है। पश्चिम के राजनैतिक तत्वज्ञान ने हमें यह सिखाया है कि जैसी प्रजा होती है उसी के अनुरूप राजा होता है। शायद लोकतंत्र की प्रणाली में यह बात सही भी हो क्योंकि वे लोकमत के आधार पर ही राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करते हैं। परन्तु सत्ता में कुछ ऐसा विचित्र जादू है कि उसे प्राप्त करने के पश्चात् राजा अपने आपको प्रजा का

प्रतिनिधि समझने के बजाय प्रजा को अपने स्वार्थ साधन का माध्यम समझने लगता है। बाबा तुलसीदास ने ठीक ही कहा है–

प्रभुता पाये काहि मद नाहीं।

प्रभुता का स्पर्श पाते ही दिमाग में न जाने कौन सा कीड़ा घुस जाता है कि व्यक्ति अपने आपको अफलातून समझने लगता है। हालांकि यह सही है कि सिंहासन से नीचे उतरते ही और एक बार प्रभुता के पद से वंचित होने पर उसकी तीन कौड़ी की भी कीमत नहीं रहती। परन्तु जब तक व्यक्ति प्रभुता में रहता है तब तक अपनी टाँगें ऊपर करके सोने वाले टिटिहरी पक्षी की तरह वह यह भी भ्रम पालता रहता है कि आसमान को गिरने से मैं ही रोके हुए हूँ।

पूरब की धारणा पश्चिम की धारणा से भिन्न है। भीष्मपितामह से धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा था कि राजा परिस्थिति की पैदावार है अथवा स्वयं परिस्थितियों को पैदा करने वाला है। भीष्म पितामह ने इसका उत्तर दिया था।

कालस्य कारणं राजा राज्ञो वा काल कारणम्।
इति ते संशयो मामूत राजा कालस्य कारणम्।।

काल का निर्माता राजा होता है या राज का निर्माता काल होता है, हे धर्मराज! तुम्हारे मन में यह संशय नहीं होना चाहिये, क्योंकि राजा ही काल का कारण होता है। महर्षि व्यास ने बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह के मुख से भारतीय राजनीतिक तत्वज्ञान का सार बता दिया इसी बात को अन्य शास्त्रों ने इस रूप में दोहराया है–

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं सामान्य जन उसी का अनुकरण करते हैं। इस सिद्धान्त में एक तरह से यह बात निहित है कि उच्च पद पर आसीन व्यक्ति की जिम्मेदारी सामान्य जन से अधिक होती है इसलिये वह अपने आपको परिस्थितियों का दास बताकर अपना पीछा नहीं छुड़वा सकता क्योंकि उस परिस्थिति निर्माण में स्वयं उसका ही तो सबसे

बड़ा योग होता है। इसलिये शास्त्रकारों ने यह विधान भी किया है कि कोई अपराध करने पर सामान्य व्यक्ति को जितना दण्ड दिया जाता है उससे कई गुणा अधिक दण्ड उस व्यक्ति को मिलना चाहिये जो प्रभुता के उच्च पद पर आसीन है। आमतौर पर सभी अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिये परिस्थितियों को जिम्मेदार बताते हैं। परन्तु वे लोग यह नहीं जानते कि परिस्थिति ही सब कुछ नहीं होती, अतः स्थिति का सम्बन्ध भी कोई चीज होती है। परिस्थिति का सम्बन्ध शरीर के साथ है और अन्तःस्थिति का सम्बन्ध मानसिक या आन्तरिक होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते भी है और परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित होते भी हैं परन्तु परिस्थिति का राग अलापने वाले अपने मन को शरीर का गुलाम बताना चाहते हैं जबकि अन्तःस्थिति का तकाजा यह है कि शरीर को मन के पीछे चलना चाहिए। शरीर केवल कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का पुंज है जबकि मन अर्थात् मनोमयकोष अन्तःकरण चतुष्टय का समुच्चय है। वही राजा और प्रजा वाली बात है मन राजा और शरीर उसकी प्रजा है। परन्तु विषयों के दास शरीर को यदि राज सिंहासन पर बिठाकर अन्तःकरण चटुष्टय को उसके आगे-पीछे छोड़ दिया जाए तो मानव को प्रभुता के स्तर पर उतरते देर नहीं लगेगी।

कभी-कभी राजनीति में यह विवाद चलता है कि भ्रष्टाचार का मूल कहाँ है? सत्तासीन लोग बड़े आराम से यह कहते नहीं अघाते कि जनता के निचले स्तरों पर ही भ्रष्टाचार है, उच्च स्तरों पर नहीं। यह विवाद इन्दिरा गाँधी और जयप्रकाश नारायण के समय से आरम्भ हो कर आज तक यथावत् विद्यमान है। वे यह भूल जाते हैं कि पानी की सहज गति ऊपर से नीचे की ओर होती है, नीचे से ऊपर की ओर नहीं। यदि ऊपरी तत्वों में भ्रष्टाचार न हो तो निचले तत्वों में भ्रष्टाचार का निवारण किया जा सकता है अन्यथा दोनों एक-दूसरे पर दोषारोपण करते रहेंगे और भ्रष्टाचार सुरसा के

मुँह की तरह बढ़ता जायेगा।

यह तो हमने एक छोटा सा उदाहरण दिया है इस तरह एक-एक बात की चर्चा करेंगे तो फिर बात समाप्त नहीं होगी। देश के सामने इस समय जितनी समस्यायें हैं, उनके केवल परिगणन से ही काम चलाना होगा। कुछ समस्यायें हमें अपने इतिहास से विरासत में मिली है और कुछ समस्यायें नई पैदा हुई हैं। अल्पसंख्यकों के राष्ट्र विरोधी और विघटनकारी दृष्टिकोण के पीछे इतिहास और वर्तमान नेतृत्व दोनों कारण हैं। कांग्रेस ने शुरु से ही जो तुष्टिकरण की नीति अपनाई उसका यह परिणाम हुआ कि वे विशेषाधिकारों की माँग करते हुए बहुसंख्यकों पर हावी होने लगे और आजादी के पश्चात् उनके हितों की सबसे अधिक अनदेखी होने लगी। ईसाई और मुसलमानों द्वारा गरीब लोगों के धर्मान्तरणों की समस्या आजादी से पहले भी थी और आजादी के बाद भी। वह ज्यों की त्यों कायम है। फिर भी आजादी से पहले महात्मा गाँधी के प्रभाव के कारण मुसलमानों में एक तबका ऐसा था कि जिसे राष्ट्रवादी कहा जा सकता था। परन्तु पाकिस्तान निर्माण ने राष्ट्रवादी मुसलमानों को अतीत शून्य बना दिया और अब केवल शाहबुद्दीन और ईमाम बुखारी जैसे कट्टर धर्मान्ध लोगों के हाथ में मुसलमानों की बागडोर आ गई है।

आजादी के पश्चात् जो कट्टरता की लहर चली उसी ने अकाली आतंकवाद को जन्म दिया और अब एक तरह से वह आंतकवाद राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर भी भस्मासुर का रूप ग्रहण कर चुका है धर्मान्धता और आतंकवाद के अलावा जिस तीसरी समस्या की ओर हम ध्यान खींचना चाहते हैं वह है राजनीति में नैतिकता का अभाव। अब यह समझा जाने लगा है कि राजनीति का नीति से कोई वास्ता नहीं है।

जब इन तीनों समस्याओं की ओर देखते हैं तो मन में प्रश्न उठता है कि यदि आज स्वामी श्रद्धानन्द होते तो वे इन समस्याओं से कैसे निपटते? निश्चित ही यह काल्पनिक प्रश्न है। परन्तु ऐसा लगता है कि यदि आज स्वामी श्रद्धानन्द होते

तो मुसलमानों की साम्प्रदायिकता और अकालियों के आतंकवाद को सम्भवतया वे अपने व्यक्तित्व के कारण इतना न बढ़ने देते। वे स्वामी श्रद्धानन्द जी थे उन्होंने "हम" की व्याख्या की थी- "हम में 'ह' का अर्थ हिन्दू और 'म' का अर्थ है- मुसलमान और इन दोनों को मिलाकर 'हम' बनता है।"

हिन्दू मुस्लिम एकता के किसी पैगम्बर ने जामा मस्जिद के मिम्बर पर खड़े होकर जो उपदेश दिया था, वह न केवल इतिहास का अद्वितीय उदाहरण बनकर रह गया, बल्कि जब भी हिन्दू मुस्लिम एकता की बात होगी तब-तब इसी उदाहरण से सर्वाधिक प्रेरणा ग्रहण की जायेगी।

आज सिख अपने आपको हिन्दुओं से अलग मानने में शान समझते हैं, परन्तु "गुरु का बाग" सत्याग्रह में सिखों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये जेल में जाने वाले स्वामी श्रद्धानंद की बात भी अकाली न सुनते, यह सहसा विश्वास नहीं होता। रही बात राजनीति में नैतिकता की उसके बारे में हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि आज स्वामी श्रद्धानंद होते तो अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये और सत्ता की प्राप्ति के लिये आज जो अंधी दौड़ लगी हुई है उसमें प्रकाश स्तम्भ की तरह खड़े होकर भुजा उठा कर यह घोषणा करते कि बिना कर्तव्य के कोई अधिकार नहीं होता। पहले जनता या नेता दोनों को अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना होगा और उसके बाद अधिकारों की बात उठाई जा सकती है। नैतिकता का मूल आधार यही कर्तव्य पालन की भावना है और इसी के साथ व्यक्ति और समाज के जीवन की उत्कृष्टता जुड़ी हुई है। आज अपने कर्त्तव्य के पालन की ओर कोई ध्यान नहीं देना चाहता। उसी का परिणाम है आजादी से पहले राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने आपसे यह पूछता था कि मैंने राष्ट्र के लिये क्या किया है? इसी मनोवृत्ति के कारण राष्ट्र के लिये कुर्बानी की होड़ लगी रहती थी। अब हर एक यह पूछता है कि राष्ट्र ने मेरे लिये क्या किया। अर्थात् व्यक्ति प्रमुख हो गया और राष्ट्र गौण हो गया।

पश्चिम से संस्कृत का परिचय कराने वालेः सर विलियम जोन्स

-भवानीलाल भारतीय

भारत पर अपना प्रशासनिक तथा राजकीय आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् विदेशी शासकों का ध्यान यहाँ की भाषा तथा साहित्य की ओर गया। मुस्लिम शासन काल में राजकीय कामकाज की भाषा फारसी थी किन्तु अंग्रेजों को यह समझने में देर नहीं लगी कि भारत की आत्मा संस्कृत भाषा और उसमें लिखे साहित्य में बसी है। आसेतु हिमाचल तथा अटक से कटक तक विस्तृत भारत के निवासी अपने जीवन मूल्यों को संस्कृत में निबद्ध देखते हैं। फलतः इन लोगों ने संस्कृत सीखने तथा इसके विशाल साहित्य के अध्ययन में मन लगाया। इस कार्य का आरम्भ किया सर विलियम जोन्स ने जो मार्च 1783 में बंगाल के सुप्रीम कोर्ट का न्यायधीश बनकर कलकत्ता आया था। इसी ने भारत के साहित्य, कला तथा इतिहास से संसार की अन्य जातियों को परिचित कराया। 27 अप्रैल 1794 को मात्र 48 वर्ष की आयु पाकर स्मृति-शेष हो जाने वाले विलियम जोन्स ने अपने अल्प कार्यकाल में जिस सारस्वत सत्र को सम्पन्न किया वह आश्चर्यजनक तथा अपूर्व था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रथम प्रशासक वारेन हेस्टिंग्स के सहयोग एवं संरक्षण में उसने प्राच्य विद्याओं के अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की तथा प्राच्य विद्याओं के अध्ययन में रुचि रखने वाले गिने चुने लोगों को इसका सदस्य बनाया। वह स्वयं इस सोसाइटी का अध्यक्ष था।

संस्कृत सीखने में जोन्स को जो कठिनाई उठानी पड़ी उसका उल्लेख पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक लेख में किया है। सुप्रीमकोर्ट के इस न्यायाधीश ने संस्कृत सिखाने के लिए बंगीय पण्डितों से निवेदन किया तो उनका उत्तर सर्वथा

निराशाजनक ही नहीं, अपमानजनक भी था। विद्या के दम्भ से ग्रस्त इन कथित पण्डितों का कहना था कि एक म्लेच्छ को देवभाषा सिखाना सम्भव ही नहीं है। गोमांस तक का सेवन करने वाले ये फिरंगी संस्कृत सीखने के अधिकारी नहीं हैं। अन्ततोगत्वा जब इन्हीं पण्डितों को महारानी विक्टोरिया की आकृति युक्त पर्याप्त रौप्य मुद्राओं का लालच दिया गया तो उन्होंने इस कथित ग्लेच्छ को भी संस्कृत पढ़ाना स्वीकार कर लिया। फिर भी तुर्रा यह रहा कि सीखने वाला उच्च पदस्थ विलियम जोन्स भी पण्डित जी के घर पर एक चटाई पर विनम्र भाव से बैठेगा तथा पाठ समाप्त होने पर जब वह गुरु गृह से चला जायेगा तो उस स्थान को गंगाजल (हुगली नदी) के प्रक्षालन द्वारा शुद्ध किया जायेगा। धन्य है विद्या लाभ के लिए अपमानपूर्ण शर्त को स्वीकार करने वाला यह विद्यालिप्सु अंग्रेज।

जोन्स के निधन के पश्चात् उसके समग्र साहित्य को छः बृहत् जिल्दों में समाविष्ट किया गया। प्रथम खण्ड की भूमिका खुद लेडी जोन्स ने लिखी जिसमें उसने अपने विद्या-व्यासनी पति के साहित्य का व्यापक आकलन किया है। वस्तुतः तुलनात्मक देवगाथावाद तथा विभिन्न प्राच्य भाषाओं से पश्चिम को परिचित कराने वाला प्रथम विद्वान् विलियम जोन्स ही था। उसने भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त चीनी, फारसी तथा अरबी साहित्य का प्रारम्भिक परिचय प्रस्तुत किया साथ ही प्राचीन आर्यावर्तीय राजाओं की वंशावलियों तथा मन्वन्तरों की कालगणना का विवेचन किया।

'लिट्रेचर आफ हिन्दूज' नामक ग्रन्थ में उसने विभिन्न विद्याओं (14 विद्याओं) का परिचय दिया तथा भारतीय ज्योतिष, संगीत, वनस्पतियों तथा यहाँ के प्राणिजगत् का विवरण लेखबद्ध किया। उसने सिद्ध किया कि शतरंज के खेल (चतुरंग) का प्रथम आविष्कार भारत में हुआ और यहीं से वह फारस में गया। जोन्स ग्रन्थावली का दूसरा भाग मुख्यतः भारत के

वानस्पतिक जगत् को समर्पित है इसमें ऋतु क्रम के अनुसार इस धरती के उद्भिज जगत् की एक सुरम्य झाँकी प्रस्तुत की गई है। विलियम जोन्स का प्रमुख कार्य मनुस्मृति तथा इसकी विख्यात् टीका (कुल्लूक रचित मन्वर्थमञ्जरी) का अंग्रेजी अनुवाद करना था। इसके लिए उसने तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कार्नवालिस से यह कहकर आज्ञा ली थी कि भारत के प्रशासन तथा यहाँ की न्याय व्यवस्था का मुचारु संचालन तभी सम्भव है जब प्रशासक तथा न्यायाधीश मनुस्मृति के विधान से परिचित हो। यह कार्य पूरा हुआ तथा मानवधर्म शास्त्र के इस आंग्ल अनुवाद का परिचय पाठकों को निम्न प्रकार दिया गया– Institute of Hindu Law or The Ordinances of Manu according to the gloss of Culluca (कुल्लूक भट्ट) Comprising the Indian System of Duties, Civil and Religious, Verbally translated from the original Sanskrit, with a preface by SIR WILLIAM JONES Knight one of the Judges of her Majesty's Supreme Court at Fort William Bengal. Founder and First President of Asiatic Society of Bengal.

उसकी ग्रन्थमाला के तृतीय खण्ड में अष्टादश स्मृतियों का सार दिया गया है। इससे हिन्दू धर्मशास्त्र की समग्र तस्वीर सामने आ जाती है। जोन्स कृत मनुस्मृति के अनुवाद का महत्व इस तथ्य से समझा जा सकता है कि लंदन के सेंट पॉल्स केथैड्रल के प्रांगण में जोन्स की जो आवक्ष प्रतिमा स्थापित की गई है वह अपने हाथ में मनुस्मृति की पुस्तक लिए है। हिन्दू विधि ग्रन्थ के समानान्तर उसने मुस्लिम विधि संहिता का भी सम्पादन किया जिसमें मुसलमानों में उत्तराधिकार तथा दायभाग की प्रचलित विधियों का संकलन किया गया है। संस्कृत के लोकप्रिय साहित्य के अंग्रेजी अनुवादों का संकलन उसकी ग्रन्थमाला के छठे भाग में हुआ है। इसमें वैदिक मंत्रों के अनुवाद के अतिरिक्त हितोपदेश,

तथा भुशुण्डि रामायण के अनुवाद सम्मिलित है।

कालिदास की विश्व विश्रुत कृतियों से अंग्रेजी पंडित जनसमाज को परिचित कराने का श्रेय सर विलियम को ही है। अभिज्ञान शाकुन्तल की टीका की भूमिका में उसने लिखा कि ईसा की पाँचवीं शताब्दी में जब ब्रिटेन के निवासी सर्वथा अनपढ़ तथा असंस्कृत थे, सम्राट् विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न कालिदास ने शाकुन्तल जैसे मूल्यवान काव्य रूपी रत्न को जन्म दिया। इस अनुवाद का शीर्षक था– Sacontala of the Fatal Ring. जोन्स ने यहाँ अपने देशवासियों को असभ्य और निरक्षर (Unpolished and unlettered) कहा है। वस्तुतः जोन्स ने ही संस्कृत भाषा की चारुता, वैज्ञानिकता तथा प्रौढ़ता को प्रथम बार पहचाना था। तभी तो उसने लिखा– यह भाषा ग्रीक से अधिक पूर्ण, लेटिन से अधिक समृद्ध तथा दोनों से अधिक परिष्कृत है।

विलियम जोन्स वैदिक देवताओं की स्तुति में लिखे गये ऋग्वेद मंत्रों की भावशबलता, विचार गाम्भीर्य तथा शैलीगत उदात्तता से अत्यधिक प्रभावित था। यही कारण है कि उसने इन मंत्रों के कुछ सूक्तों का भाषान्तर किया। कालिदास के ऋतुसंहार का सर्वप्रथम अंग्रेजी रूपान्तर भी उसने ही किया था। छः खण्डों में समाप्त उसके समस्त ग्रन्थों का यह संकलन सर्वप्रथम उसकी मृत्यु के पाँच वर्ष बाद 1799 में छपा था। अल्पवय में परलोकगामी विलियम जोन्स की स्तुति में कोलकाता स्थित एशियाटिक सोसाइटी के प्रांगण में एक स्मारक स्तम्भ स्थापित किया गया है जो आज भी पश्चिमी देशों को संस्कृत भाषा और साहित्य से परिचित कराने वाले इस विद्याव्यसनी अंग्रेज का स्मरण कराता है। लेडी जोन्स के अनुरोध पर सर विलियम के मित्र लार्ड टेन माउथ ने Memoirs of that Life, Writings and Correspondence of Sir William Jones, का सम्पादन किया था।

3/5 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

सत्यार्थप्रकाशः एक समाज-वैज्ञानिक दृष्टि

-डॉ. श्याम सिंह 'शशि'

लेखक परिचय- गणतंत्र दिवस 1990 में पद्मश्री से सम्मानित वरिष्ठ साहित्यकार एवं नृ-वैज्ञानिक डॉ. श्यामसिंह 'शशि' का जन्म गाँव बहादुरपुर जट (हरिद्वार, उत्तराखण्ड) में हुआ था। उन्होंने समाज शास्त्र में पी.एच.डी. नृविज्ञान और साहित्य में डी.लिट. डिग्रियाँ प्राप्त कीं। आप ने भारत सरकार के प्रकाशन विभाग में निदेशक/महानिदेशक के रूप में दस वर्ष कार्य किया। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के कार्य से दो बार भारत सरकार के वरिष्ठ निदेशक पद से इस्तीफा दिया जिसके न स्वीकारने पर 1994 में स्वैच्छिक अवकाश लिया।
डॉ. शशि द्वारा सौ पुस्तकें हिन्दी में लिखी गईं। हिमाचल तथा विश्व के यायावरों पर दो दर्जन ग्रन्थ, पच्चीस बाल-कृतियाँ तथा यात्रा वृत्तांत, बीस कविता संग्रह, एक महाकाव्य, विश्वकोश आदि विशाल साहित्य का लेखन एवं सम्पादन किया है। उनके द्वारा रचित 'अग्निसार' सीरियल तथा काव्य नाटक को उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरस्कृत किया तथा उस पर 10 ऐपिसोड का धारावाहिक नेशनल टी.वी. पर प्रसारित हुआ। उनके द्वारा लिखित यायावर समुदायों, जिप्सियों के साहित्य पर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने उनको 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' से सम्मानित किया।

आर्ष ग्रन्थ भारतीय मनीषा के अद्भुत अवदान है जिनकी मानव-जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिक वाङ्मय ज्ञान-विज्ञान का विश्वकोश है तो 'सत्यार्थप्रकाश' को विश्वकोशो का विश्वकोश कहा जा सकता है तथा उसे आर्य जगत् का 'महाकोष' कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वस्तुतः 'सत्यार्थप्रकाश' केवल एक धर्मग्रन्थ ही नहीं, अपितु एक जीवन-दर्शन है, जिसका पूर्वार्द्ध दस दिशाओं का प्रतीक है

तथा उत्तरार्ध चारों ओर फैले अंधविश्वासों के तमस को तिरोहित करने के लिए बेबाक सत्य का प्रकाश करता है। वह 'सत्यम् ब्रूयात' का पथ तो अपनाता है किन्तु 'प्रियम् ब्रूयात्' की अपेक्षा 'जनहितम् ब्रूयात्' को प्राथमिकता देता है। जनहित में वैचारिक सर्जरी का होना स्वाभाविक है जो कुछ क्षणों के लिए कटु तथा कष्टदायक लगता है किन्तु उसका उद्देश्य अन्ततः स्वस्थ-चिंतन, विश्व-कल्याण एवं विश्व-शांति का वातावरण निर्मित करना है। 'सत्यार्थप्रकाश' को लिखने का भी यही मन्तव्य रहा है जिसमें युग-चिंतक महर्षि दयानन्द ने नीर-क्षीर-विवेक की तर्क-शैली अपनाई है तथा ऋषि-परम्परा का निर्वहन किया है। महर्षि 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका में लिखते हैं- "मेरा इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप प्रस्तुत करें व स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।"

ऋषिवाणी इसी आनन्द तथा परमानन्द के लिए दस समुल्लासों में 'प्रियम् ब्रूयात्' का भी प्रश्रय लेती है। किन्तु संन्यासी की भाषा में 'सत्यम् ब्रूयात्' के साथ-साथ स्पष्टवादिता अथवा साफगोई न हो तो उसकी लेखनी सामान्य लेखकों की तरह

पाठकीय रुचि के व्यामोह में भ्रमित भी हो सकती है। ऋषिवाणी का यह कथन 'सर्वजन हिताय' लेखन-शैली को और अधिक तथ्यात्मक तथा धारदार स्वरूप प्रदान करता है। ऋषि का अभीष्ट किसी का दिल दुखाना नहीं, बल्कि प्यार देना था। इसी सन्दर्भ में वे आगे लिखते हैं- "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है, परन्तु इस ग्रंथ में ऐसी बात नहीं है और न किसी का मन दुखाना व किसी की हानि का तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नही है।"

"सत्यार्थप्रकाश" की भूमिका में स्वामी जी का स्पष्टीकरण पढ़ने के बाद मन-मुटाव की स्थिति और भ्रान्तियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं। 'उत्तरार्द्ध' के चार समुल्लासों के बारे में स्पष्ट करते हुए स्वामी जी लिखते हैं- "बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं जो वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मतवाले लोग क्योंकि मत के आग्रह में उनकी बुद्धि अहंकार में फँसकर नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाईबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।"

'सत्यार्थप्रकाश' की सामग्री पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञान के माणिक्य-मुक्ता का अक्षय भंडार मिलेगा उसके चौदह समुल्लासों में जिस अनुक्रम से सामग्री का प्रस्तुतीकरण किया गया है, वह किसी भी महान् लेखक की प्रतिभा के अनुरूप है। स्वामी जी ने अध्यायों को अध्याय न कहकर 'समुल्लास' कहा है जो

उनके मौलिक लेखन को प्रमाणित करता है। इन समुल्लासों की विषय-सामग्री इस प्रकार है- प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या; द्वितीय समुल्लास में संतानों की शिक्षा; तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रंथों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति; चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहस्थाश्रम का व्यवहार; पंचम में वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम की विधि; छठे समुल्लास में राजधर्म; सप्तम में वेदेश्वर विषय है। समुल्लास आठ में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हैं। नवें समुल्लास में विद्या, अविद्या बन्ध और मोक्ष की व्याख्या है। समुल्लास दस में आचार-अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय है। एकादश समुल्लास में आर्यावर्तीय मत-मतान्तर का खण्डन-मण्डन विषय है। द्वादश समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन मत के विषय में, तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत का विषय तथा चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय समीक्षात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त सामग्री से विदित होता है कि स्वामी जी ने न तो किसी नये धर्म की स्थापना की और न ही गुरुडम को बढ़ावा दिया। वस्तुतः इस ग्रंथ को यदि पाँचवें वेद की संज्ञा दी जाए तो उससे 'वेद' शब्द का विस्तार ही होगा, जिसका अर्थ 'ज्ञान' होता है। यह ज्ञान ही आनन्द है जिसे स्वामी जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' में गागर में सागर की तरह भरकर सर्वप्रथम हिंदी में लिखा, अपनी मातृभाषा गुजराती अथवा पाण्डित्य भाषा संस्कृत में नहीं। सरल हिन्दी में होने के कारण यह ग्रंथ तमाम देश में सर्व साधारण पाठकों तक पहुँचा, किन्तु उसका आधार ज्ञान-मार्ग होने के कारण भक्ति-मार्ग के पाठकों को विशेष आकर्षित नहीं कर सका। वास्तव में 'सत्यार्थप्रकाश' में नवधा भक्ति जैसे प्रयोग भले ही न मिलें, किन्तु ईश्वर की व्याख्या करते समय उसके सौ नामों 'ओम्' को सर्वाधिक महत्त्व देना उनके वैज्ञानिक विश्लेषण का परिचायक है।

मानव-जीवन के सौ वर्षों का समग्र स्वरूप दृष्टि में रखते हुए स्वामी जी ने उसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, चार आश्रमों में विभाजित किया।

स्वामी जी की लेखनी जब मंडनात्मक होती है तो सात्विक प्रेमरस की वैचारिक वर्षा करती है और जब खंडनात्मक रूप ग्रहण करती है तो अकाट्य तर्कों के कारण मन-मास्तिष्क को एकबारगी झकझोर देती है। उसे सत्य-असत्य को समझाने की सुबुद्धि तथा सद्विवेक प्रदान करती है। उनकी कलम जब अंधविश्वास, पाखंड तथा सामाजिक कुरीतियों के कारण मानव की त्रासदी से रूबरू होती है तो उसे सर्जन डॉक्टर की तरह चीर-फाड़ करते हुए भी देर नहीं लगती। उसके लिए अपने पराए का कोई भेद नहीं रहता। हम यहाँ स्वामी जी के समरस चिंतन को दृष्टि में रखते हुए "सत्यार्थप्रकश के दो समुल्लासों के अंश प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनसे स्पष्ट होगा कि स्वामी जी ने सत्य के संधान में किसी को नहीं बख्शा। उन्होंने सबसे पहले अपने घर के हिन्दू धर्म की ही खूब आलोचना की तथा ग्यारहवें समुल्लास में मूर्तिपूजा का जमकर खंडन किया। यानि उन्होंने पहले अपने ब्राह्मण समाज को नाराज किया और उसके बाद सिख, जैन, बौद्ध तथा हिन्दू समाज के मत-मतान्तरों के अनुयायियों को। यही कारण है कि 'सत्यार्थप्रकाश' के विरुद्ध सर्वप्रथम आलाराम नाम के एक सिंधी हिन्दू संन्यासी ने इलाहाबाद कोर्ट में याचिका दायर की। संभवतः वह अंग्रेजों को खुश करना चाहता था, इसलिए उसने इस ग्रंथ में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यक्त राजद्रोह का अभियान चलाया जिसे जस्टिस हैरिसन ने स्वयं अंग्रेज होते हुए भी खारिज कर दिया। वर्ष 1944 में सिंध में मुस्लिम लीग का शासन था। वहाँ किसी सिरफिरे मुसलमान ने 'सत्यार्थप्रकाश' के चौदहवें समुल्लास पर बैन करने के लिए कराची में मुकद्दमा दायर किया जो कई पेशियों में बहस सुनने के बाद खारिज कर दिया गया। इसी प्रकार 'सत्यार्थप्रकाश' तथा आर्य समाज के विरुद्ध समय-समय

पर बहुत से मुकद्दमे चलाए गए जिनमें विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी।

'सत्यार्थप्रकाश' के एकादश समुल्लास में मूर्तिपूजा के विरुद्ध स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि "पाषाणादि मूर्तिपूजा को सर्वथा न करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवो को छोड़के पाषाणादि की पूजा करना स्वीकार किया है। इसको लोगों ने इसीलिए स्वीकार किया है कि जो माता-पितादि के सामने नैवेद्य वा भेंटपूजा ले जाएँगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घण्टानाद टं टं पूं पूं और शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अथवा **'त्वमङ्गुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि'** जैसे कोई किसी को छले व चढ़ावे कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे।

उक्त संदर्भ में हम यहाँ बताना चाहेंगे कि आज मूर्तिपूजा तथा अंधविश्वास को परोसने के कारण हिन्दुत्व तो बहुत फलफूल रहा है किन्तु आर्यत्व नहीं। इसी तरह जातिप्रथा तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक के बाद स्वामी दयानन्द, विवेकानंद, महात्मा फुले, गाँधी जी और डा. अम्बेडकर आदि ने आवाज उठाई। फलतः अस्पृश्यता तो काफी कम हो गई किन्तु वोट बैंक के कारण जाति-प्रथा के स्थान पर जातिवाद बढ़ता गया। आरक्षण के कई रूप हैं जिन्हें समाज-वैज्ञानिक दृष्टि से आर्थिक आरक्षण, सामाजिक आरक्षण तथा सम्पर्क आरक्षण आदि विभिन्न शब्दावलियों में व्याख्यायित किया जा सकता है। वनवासियों-दलितों तथा अन्य कमजोर वर्गों के लिए उपर्युक्त आरक्षणों के अभाव में भले ही एक सीमा तक संवैधानिक आरक्षण आपेक्षित हो, किन्तु कतिपय समाज वैज्ञानिकों तथा डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भी उसे स्थायी बनाना उपयुक्त नहीं है। स्वामी जी ने 'मनुस्मृति' तथा अन्य स्मृति व पौराणिक ग्रंथों में प्रक्षिप्त अंशों का खण्डन एवं

विरोध किया। उन्होंने मनुस्मृति के श्लोकों को उद्घृत करते हुए प्रमाणित किया कि स्त्री और शूद्रों को वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार है। मनु की वर्ण-व्यवस्था जन्म पर नहीं बल्कि कर्म पर आधारित थी। देखिए 'सत्यार्थप्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास में 'मनुस्मृति' के उद्घृत यह अंश-

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यत्तथैव च।।"

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो यह शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये, वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाये।

सत्यार्थप्रकाश में यद्यपि किसी प्रकार के आरक्षण की बात नहीं की गई किन्तु कर्म पर आधारित वर्णानुसार यथायोग्य कार्य करने पर जोर अवश्य दिया गया। गौतम बुद्ध, महावीर आदि ने जाति प्रथा का डटकर विरोध किया था। बहुत-से संत-महात्माओं ने समाज-सुधार का बीड़ा उठाया किन्तु आज तक जाति-प्रथा का उन्मूलन नहीं हो सका। स्वयं इन समुदायों में भी खामियाँ पैदा हो गईं जिनको स्वामी जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' में उजागर किया।

उपर्युक्त विषय को यहीं छोड़कर हम चौदहवें समुल्लास में वर्णित इस्लाम के बारे में स्वामी दयानन्द के कथन का एक अंश यहाँ दे रहे हैं, जिससे पता चलेगा कि स्वामी जी किसी अन्य धर्मावलम्बी से कदापि द्वेष नहीं करते थे। "यदि जो यह 14वाँ समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से। अन्य ग्रंथ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फिरके होने के कारण किसी शब्द, अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब एकमत हैं। सब मतों

के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों पर परस्पर विचार करने का समय मिले और एकदूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। न किसी अन्य मत पर झूठ-मूठ बुराई या भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो-जो भलाई है, वही भलाई और जो जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे। इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे, तत्पश्चात् जो उचित होगा, वो माना जाएगा, क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद, विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रहकर परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।

कुरान के अन्दर भी अन्य धर्मग्रन्थों की तरह अनेक विसंगतियाँ हैं, जिनका निराकरण अरबी भाषा के विद्वान् ही कर सकते हैं। हो सकता है मनुस्मृति के प्रक्षेपों की भांति कोई मुसलमान स्कॉलर उसकी अलग व्याख्या करे अथवा किसी विद्वान् के अर्थ को नाकार दे। अलबत्ता महर्षि दयानन्द ने प्रामाणिक अनुवाद पर ही टीका-टीप्पणी की है।

ध्यातव्य है कि कबीर वाणी में हिन्दू-मुसलमानों की बुतपरस्ती, मूर्तिपूजा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों पर स्वामी जी से कहीं अधिक प्रहार किए गए है। अन्य हिन्दू-मुस्लिम संतों ने स्वतन्त्र मत भी प्रकट किए है। वस्तुतः सच्चा संन्यासी न तो कोई लाग-लपेट रखता है और न ही किसी व्यक्ति या मत-विशेष के पक्ष में मिथ्या विवरण देकर किसी का दिल दुखाता है। वह निर्भीक स्वर में सत्यासत्य का विवेचन करता है।

"स्वामी जी की मृत्यु पर मुस्लिम नेता सर सय्यद अहमद खाँ ने कहा था- स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी भी उन्हें देवता स्वरूप मानते हैं।"

बी-4/245, सफदरजंग इंक्लेव, नई दिल्ली-110029

मो. 011-41652399, 26173051

युवा शक्ति

–डॉ. रामदेव प्रसाद सिंह 'देव'

युवा शक्ति फूल है– गुलाब का
सुन्दर है सुगन्धित है – फूलों का राजा है
पर याद रखें
पास में काँटें भी हैं–
काँटों का भी तकाजा है
मूल्यों की कब्र पर कराहती मानवता की
पूजा अगर गुलाब से ही करनी है
तो 'सर्वस्य लोचनं शास्त्रं
व 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणते'
अथवा 'एकैकमपि अनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्'
सूक्तियाँ भी याद रखनी हैं
'पूजा' में पूरी सावधानी बरतनी है
वरना खतरा अवश्यम्भावी है
युवा शक्ति मायावी है
विशेषकर आजकल
सब पर रावण हावी है–
जो यति वेश बना सीता हरण करता है
शस्त्र अथवा शास्त्र से भी
नहीं डरता है–
रावणत्व?
वह तो केवल रामत्व से मरता है
इसे भूल जाना
अक्षम्य भूल है
युवा शक्ति फूल है।

कैसे संभव है हिन्दू-मुस्लिम एकता?

-भानुप्रताप शुक्ल

भारत में रह रहे मुसलमानों की देशभक्ति पर आए दिन प्रश्नचिह्न लगाए जाते हैं। यह सिलसिला अभी और आज का नहीं है। इसका एक लम्बा इतिहास है और इसके पीछे कुछ अनुभूतियाँ भी हैं। इस कार्य में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उन स्वयंभू मुस्लिम नेताओं की है जो अपनी मजहबी ठेकेदारी बरकरार रखकर राजनीतिक सौदेबाजी करते रहते हैं। देश के आम मुसलमानों को मदरसों में बंद रखकर और स्वयं मदरसे से बाहर आकर उनकी भलाई करने के नाम पर मजहबी उन्माद पैदा करते रहने की एक सतत प्रक्रिया है देश का आम मुसलमान देश और हिन्दू विरोधी नहीं है तो भी उसके तथाकथित नेताओं और सेकुलरिस्ट राजनीतिक दलों का लाभ-लोभ उन्हें ऐसे माहौल में खड़ा कर देता है कि उनकी देशभक्ति संदिग्ध हो जाती है।

डाक्टर भीमराव अम्बेडकर ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इस ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया है 'बाबा साहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड पंन्द्रह, पृष्ठ 270 से 276 तक' डॉ. किचलू, मौलाना सुभानी, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लाला लाजपतराय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की साक्षी देकर बाबा साहेब ने मुस्लिम मानसिकता को उजागर करने का प्रयास किया है। 'मेरी यह पुष्ट धारणा है कि यदि मुल्लाओं, मौलवियों और स्वयंभू मुस्लिम नेताओं की तिकड़मों से देश के आम मुसलमानों को बचाया जा सके तो हिन्दू-मुस्लिम द्वेष और दुश्मनी का अंत किया जा सकता है।' बाबा साहेब अम्बेडकर लिखते हैं कि 'अनेक मुस्लिम नेताओं के बयानों से यह स्पष्ट है कि भारत की आजादी कायम रहे, इसे वे अपने दायित्व में शुमार नहीं करते। मैं ऐसे ही दो उदाहरण

दे रहा हूँ-

'डॉ. किचलू ने 1925 में लाहौर में एक सभा में कहा था. ... एक बात की मैं स्पष्ट घोषणा करूँगा। सुनो, मेरे हिन्दू भाइयो, सुनो। ध्यान देकर सुनो। यदि आप हमारे तंजीम आंदोलन के मार्ग में बाधा डालेंगे और हमारा अधिकार नहीं देंगे, तो हम अफगानिस्तान या अन्य मुस्लिम शक्ति के साथ हाथ मिलाएँगें और इस देश में अपना शासन स्थापित करेंगे।'

'मौलाना आजाद सुभानी ने 27 जनवरी 1929 को सिलहट में एक अन्य मौलाना के सवाल के जवाब में कहा था, "यदि भारत में कोई प्रतिष्ठित नेता है जो अंग्रेज को इस देश से बाहर भगाने के पक्ष में है, तो वह मैं हूँ। इसके बावजूद मैं चाहता हूँ कि मुस्लिम लीग की ओर से अंग्रेजों की लड़ाई न हो। हमारी असली लड़ाई बाईस करोड़ हिन्दू दुश्मनों से है, जो बहुसंख्यक हैं। यदि हम इस्लाम के सबसे बड़े शत्रु हिन्दुओं से नहीं लड़ते और उन्हें कमजोर नहीं करते तो वे न केवल भारत में रामराज्य स्थापित करेंगे, बल्कि क्रमशः सारे संसार में फैल जाएँगे। यह भारत के नौ करोड़ मुसलमानों पर निर्भर करता है कि हिन्दुओं को शक्तिशाली बनाना है या कमजोर।"

श्रीमती एनी बेसेंट कहती हैं- "भारत के मुसलमानों के सम्बन्ध में एक दूसरा गंभीर प्रश्न और उठता है। यदि मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच वैसे ही सम्बन्ध रहते हैं, जैसे लखनऊ में हुआ करते थे तो यह प्रश्न स्वतंत्र भारत में देर-सवेर अवश्य ही उठता। परन्तु खिलाफत आंदोलन के बाद में परिस्थितियाँ बदल गईं हैं और खिलाफत जिहाद को बढ़ावा देने से भारत को पहुँची कई क्षतियों में एक यह भी है कि मुसलमानों के दिल में 'नास्तिकों' (काफिरों) के विरुद्ध नंगी और बेशर्मी की हद तक नफरत पैदा हुई जो कभी

पहले न होती थी। हम देखते हैं कि राजनीति में तलवार का वही पुराना मुस्लिम धर्म (मजहब) लोगों की भावना को उकसा रहा है। हम देख रहे हैं शताब्दियों की विस्मृति के बावजूद अलगाव की यह प्राचीन भावना पुनजीर्वित हो गई है, जिसने अरब द्वीप के सम्बन्ध में यह दावा किया है कि 'यह मुसलमानों का पवित्र भूखंड है और इसे गैर-मुस्लिम के अपवित्र पाँव गंदा न करें।"

'हमने मुसलमान नेताओं को यह कहते सुना है कि यदि अफगान भारत पर आक्रमण करें, तो वे अपने मजहब को मानने वाले अफगानों की सहायता करेंगे और हिन्दुओं की हत्या करेंगे, और दुश्मनों से अपनी मातृभूमि की रक्षा करेंगे। इसने हमें यह सोचने पर विवश कर दिया कि मुसलमानों की पहली वफादारी मुस्लिम देशों के प्रति है, हमारी मातृभूमि के प्रति नहीं। हमें यह मालूम हुआ कि उनकी उत्कट इच्छा है :- 'अल्लाह का साम्राज्य' स्थापित करना, न कि संसार के परमात्मा का जिसे अपने सभी प्राणियों से समान प्रेम है। अल्लाह के आदेश को वे अपने किसी पैगम्बर के आदेश में देखते हैं और उसी के अनुसार यह तय करते हैं कि खुदा पर अविश्वास करने वालों के साथ कैसा सलूक किया जाए।

'मुस्लिम नेताओं का यह दावा कि मुसलमानों को अपने पैगम्बर के कानून का पालन करना चाहिए और अपने राज्य के कानूनों, जिसमें वे रहते हैं, को दरकिनार कर देना चाहिए, जो राष्ट्र और नागरिक व्यवस्था के लिए घातक है। यह उन्हें बुरा नागरिक साबित करता है। क्योंकि उनकी निष्ठा का केन्द्र राष्ट्र से बाहर है और यदि वे शौकत अली जैसे मुस्लिम समुदाय के मान्य नेताओं के विचारों से मतैक्य रखेंगे, तो उन पर उनके सह-नागरिक विश्वास नहीं करेंगे।

यदि भारत स्वतंत्र हुआ तो मुस्लिम जनसंख्या वाला वह क्षेत्र, जिसमें रह रहे अज्ञानी लोग उन लोगों का अनुसरण करेंगे जो पैगम्बर के नाम पर आह्वान करते हैं, तो भारत की स्वतंत्रता के लिए तत्काल खतरा पैदा हो जाएगा। वे लोग अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, फारस, इराक, अरब, तुर्की और मिस्र एवं मध्य एशिया के उन कबीलों से मैत्री करके जो मुस्लिम हैं, भारत को मुस्लिम शासन के अधीन करने के लिए एकजुट हो जाएँगे और मुस्लिम शासन की स्थापना कर देंगे। हमने सोचा था कि भारतीय मुसलमान अपनी मातृभूमि के प्रति वफादार होंगे और वास्तव में हम अब भी सोचते हैं कि उनमें से शिक्षित वर्ग यह कोशिश करे कि मुसलमानों में ऐसी भावना फैले, परन्तु ऐसे मुसलमान बहुत कम हैं और अक्षम हैं, इसलिए उन्हें मजहब-विरोधी की संज्ञा देकर उनकी हत्या कर दी जाएगी।

'मालाबार से हमें सीख मिल चुकी है कि इस्लामी शासन के अर्थ क्या हैं और अब हम भारत में खिलाफत राज्य का दूसरा नमूना नहीं देखना चाहते। मुझे इसकी सच्चाई में शंका है, परंतु सभ्य समाज में ऐसे लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है जो यह मानते हैं कि उनका मजहब उन्हें हत्या करने, डाका डालने, आगजनी करने और उन लोगों को देश से निकालने की शिक्षा देता है," इसी तरह की आशंका लाला लाजपतराय ने श्री सी. आर. दास को लिखे अपने पत्र में व्यक्त की थी- 'असहयोग आंदोलन' में मुस्लिम नेताओं की ईमानदारी एवं निष्ठा को मानते हुए और उसे स्वीकारते हुए भी मैं समझता हूँ कि उनका मजहब उनके मार्ग में एक किस्म से रुकावट डालता है।..... मुझे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं का डर नहीं है परन्तु मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तान

के सात करोड़ मुसलमान और अफगानिस्तान, मध्य एशिया, अरब, मैसोपोटामिया और तुर्की के हथियारबंद गिरोह, मिलकर अप्रत्याशित स्थिति पैदा कर देंगे।'

बंगला समाचार पत्र के सम्पादक ने 1924 में कवि रवीन्द्रनाथ टैगौर का साक्षात्कार लिया। इसमें कहा गयाः- 'दूसरा महत्वपूर्ण कारण, कवि के अनुसार, जो हिन्दू-मुस्लिम एकता को असंभव बना रहा था, वह है मुसलमानों की देशभक्ति, जो वे किसी एक देश के प्रति कायम नहीं रख सकते। कवि ने कहा कि उन्होंने कई मुसलमानों से निःसकोच होकर पूछा कि यदि भारत पर कोई मुसलमान ताकत आक्रमण करती है, तो क्या वे अपने हिन्दू पड़ोसी के साथ मिलकर अपने देश की रक्षा करेंगे? कवि को जो उत्तर मिले, उनसे उन्हें संतोष नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने कहा कि वे निश्चित रूप से कह सकते हैं कि श्री मोहम्मद अली जैसे व्यक्ति का यह कथन है कि किसी भी परिस्थिति में कोई भी मुस्लिम किसी भी देश में रहता हो, इस्लाम धर्मावलंबी के विरुद्ध उसका खड़ा होना असंभव है।" मेरी राय में इस पर अलग से टिप्पणी करने की आवश्कता नहीं हैं। अपने अनुभवों की कसौटी पर कसकर देशवासी क्या सही है, क्या गलत का निर्णय करें तो ही किसी सार्थक समाधान तक पहुँचा जा सकता है और इस प्रश्न का उत्तर भी प्राप्त हो सकता है कि क्या बात है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रत्येक प्रयास अकारथ हो जाता है और देश का हर मुसलमान अलगाववादियों एवं आतंकवादियों को संरक्षण देने वालों की श्रेणी में खड़ा कर दिया जाता है।

दैनिक जागरण से साभार

BATTLE OF REZANG La by SHEKHAR GUPTA

(50th Anniversary on 18th November, 2012)

(The battle of Rezang La was the only bright spot for India in the 1962 war with China. In this Walk the Talk with The Indian Express Editor-in-Chief Shekhar Gupta on NDTV 24x7, Ramchander Yadav and Nihal Singh, two of the six soldiers who survived that battle, look back at the events of that icy November morning 50 years ago)

It's sad that any time we talk about the India-China war of 1962, horrible words like debacle, disgrace, disaster come to our minds. This is the 50th anniversary of that war. It's a war that this country ideally would love to forget but cannot because it's etched in our memories as one of the saddest chapters of our independent history. And it's sadder still that because of that overwhelming sense of failure in that war, we tend to sometimes almost deliberately ignore the one chapter that I think is without parallel in modern post Second World War military history, the battle of Rezang La on November 18, 1962. I will give you a brief history. Charlie Company of a battalion called 13 Kumaon was divided in several platoons on one ridge of two kilometres, protecting the airfield of Chushul which was vital if India was to hold Ladakh. It was attacked on the morning of November 18 by maybe 5,000-6,000 Chinese with heavy artillery support. A crest behind this ridge prevented Indian artillery from being able to support these jawans. And what did these jawans do? They fought to last man, last round. That's an expression you hear in movies and read in war comics, but that is something that actually happened in the battle of Rezang La. Of the 120 men and officers of this Company, 114 died,

five were taken prisoners as wounded—they all escaped—and one was sent back to tell the story of the battle to the rest of the world. And who sent him back? This Company's most remarkable commander, Major Shaitan Singh, who got a Param Vir Chakra for leading this battle. I am today in Rewari, the area from where these jawans came... It was a Kumaon battalion but this was an Ahir Company from Rewari in Haryana. With me are two of those six survivors—in fact, only four remain with us now—Honorary captain Ramchander Yadav and Havaldar Nihal Singh. So both of you were with Major Shaitan Singh?

(Some more extracts from OP-ED Page of Indian Express dated 20th October, 2012)

Even an incorrigible military history enthusiast like this writer had nearly forgotten about what can only be described as a truly fighting frontier of 1962, until a tragic personal event took me to Rewari district in Haryana, 100 km south of Delhi. My old driver Ram Kumar, so much a member of my family, suddenly died of a heart attack and it took me to his village. He was an Ahir, as Yadavs are generally known in Haryana, and the Rewari-Mahendergarh districts are their homeland. It is then that a tiny memorial by the roadside in Rewari caught my eye. Lost in shrubbery and garbage (sadly) was the tiny column with the names of 114 soldiers of Charlie ('C') Company of 13, Kumaon regiment, who perished in the battle of Rezang La, engraved on it. But why a memorial to martyrs of the Kumaon regiment in Rewari? Because this was an Ahir company. Almost all those who died were from a small cluster of villages right here.

But you cannot appreciate the full story yet. Not until you know

how many soldiers in the Charlie Company had stood that morning of November 18, 1962 (-24 degrees Celsius was recorded that morning) to defend Rezang La, a vital approach to Chushul Valley. It was 120, including the company commander, Major Shaitan Singh Bhati. Of these, 109 died fighting, five were wounded and taken prisoner by the Chinese. A few escaped later at night, in the confusion, as the Chinese licked their wounds. Among those who managed to escape and tell the tale was (then) Sepoy Ramchander Yadav, the major's batman and radio operator, who was charged with concealing his valiant officer's body so the Chinese wouldn't find it, which he did successfully. He led a joint International Red Cross and Indian army expedition the following February to the exact spot where Shaitan Singh (awarded the Param Vir Chakra) lay between two boulders, buried by him under snow, a patch of frozen blood and a white mitten kept as a marker. Last Sunday, Ramchander, and (then) Sepoy Nihal Singh, who manned the LMG (light machine-gun) with the major's party, was the last man firing from his company headquarters until a Chinese MMG burst went through both his elbows, was taken prisoner and escaped despite his fresh wounds, agreed to come to Rewari to tell me the story of those incredible five hours 50 years ago. It is the first time I am making such a pitch, but you will understand why. So please catch their first-person accounts on NDTV 24x7's Walk the Talk, in a special two-part conversation this evening, and the following Saturday.

(Reproduced from Indian Express)

BODY IS THE FIRST GIFT

-Sadhguru

Now people have come to the conclusion that body means pain. Body is not pain; body can be very beautiful. You can make your body in such a way that you need not have to carry it around, you can let it just float with you. Just food, practices and a little change in attitude, you will see this body becomes a miracle.

If you look at this body as a mechanism, definitely it is the most sophisticated one on earth right now. Super computers do not match this one. They say a single molecule of DNA can perform 100 times more functions than all the computers in the world put together. A single molecule of DNA contains that many functions. This is definitely the best machine.

This is the first gift that was given to you. And those who do not appreciate this gift, those who are not bothered to take care of this one properly, would God given any more gifts to them? It stops there. Whoever is your creator, he gave you this wonderful body; the first gift that is given to you is a physical one, and then if he sees you abusing it, if you do not know how to take care of it, he knows it is not worth showering more gifts upon you. So it is important that the body is kept in a comfortable and joyous state. If the body is joyous, it will encourage you to go further.

You don't have to become a great athlete, but you can keep the body healthy, comfortable and happy. Otherwise it will pull you down. The physical body itself can be happy in the sense-after a bout of rain, if you go out and see, all the plants seem to be happy. Have you seen that they are almost laughing? Not just washed and clean, if you are sensitive you can see they are exuding happiness. Have you felt this? The body can be happy if it is kept properly. If you eat certain other foods which are not suitable the body will become dull and lethargic; you will feel sleepy. I am talking about life, you know.

See, if we are sleeping for eight hours a day, if we live for 60 years, we have slept for 20 years. Twenty years of our lives we have spent sleeping. Now, if we are sleeping for 12 hours, 50 per cent of our lives we spend sleeping, the remaining 30 to 40 per cent goes in eating and ablutions, no time left.

Nobody can enjoy his sleep. In sleep you don't exist. The only thing that you can enjoy is restfulness. The body is well rested, that you enjoy. How to keep the body well rested? First of all, why tire it? Tiresomeness doesn't come to the body because of work, for most people. People who are working more, they are more active, isn't it? Food is one important aspect, attitudes are also there, but food plays an important role. If you eat the wrong kind of food, you have to drag your body and go. If you eat the right type of food, it goes ahead of you, and that is how it should be kept.

Success Mantra : Utilise your inner resources

-Adwaita Mohapatra

All of us aspire for a successful life, but only some of us achieve it. When we find some people growing and becoming successful, we become curious about the formula of success. Actually, there is no proven formula for being a successful person. Everybody can be successful by simply utilising his internal resource gifted by the Almighty.

God is so beautiful in his creation. Every creation is different in his quality and behaviour. Also, the inner resource gifted to each human being is special. For that reason, there is a unique opportunity for everyone to be recognised with his specific quality and become successful. But most of the time we cannot recognise the gift and remain unfocused on our strength. We fail to focus in one particular area which can be enriched by our internal power. We must have a unidirectional movement which will lead to the destination of success.

There is a little story how Vivekananda taught a group of boys the simplicity of success. Once Vivekananda was sitting by a river and watching the natural beauty. At the same time, some boys were playing with balloons. They were throwing the balloons into the river and shooting at them. But they were not successful in hitting any balloon. Vivekananda went to the children and asked why they were not successful. One of the boys told Vivekananda that aiming at and shooting at a moving object was very difficult, if not impossible.

Vivekananda told them that it might not be too difficult as climbing a mountain. The boys joked with Vivekananda and said how could a monk know about the difficulty of shooting? One of the boys asked whether Vivekananda could shoot the balloon. Vivekananda picked up a revolver and took his aim. The boys were awestruck when they saw that Vivekananda shot all the balloons.

When they asked about the 'mystery', Vivekananda said, "It was easy for me because I focussed all my concentration on the balloons. I could not see and think of any other thing." So, the lesson: Focus and Achieve.

RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2011-2013

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम।
विविस्वता वक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं
धारयन्द्रविणोदाम्।। ऋ.1/7/3/2

ऋषि- कुत्स आंगिरसः, देवता-अग्निः, छन्द-त्रिष्टुप्

अर्थ- हे मनुष्यो! यह प्रभु (पूर्वया निविदा) आदि से सनातन, सत्यता गुणों वाला अग्नि ही परमात्मा था अन्य कोई नहीं था। सृष्टि के आदि में उस स्वप्रकाश स्वरूप ईश्वर ने प्रजा की उत्पत्ति पर विचार करके (कव्यता-आयोः इमाः) सर्वज्ञता आदि सामर्थ्य से सर्व विद्यायुक्त वेदों तथा मननशील मनुष्यों, पशुवृक्ष आदि और प्रजा को उत्पन्न किया। अतः वह सबका स्तुति करने योग्य है। (विविस्वता चक्षसा) वह सूर्य आदि तेजवाले सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है। उसी ने स्वर्ग (सुख विशेष) लोक (अपः) अन्तरिक्ष, पृथिवी और दुःख विशेष नरक आदि रचे हैं। ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर को जो विज्ञान आदि धन देने वाला है, (देवाः) विद्वान् लोग उसे ही अग्नि जानते हैं-हम लोग उसी की स्तुति करें।

Oh devotees, that Almighty God, the most Ancient one, possessing truthfulness etc. exists from eternity. Even in the beginning of universe when there was nothing the Omnipotent Lord started the process of creation. Then for regulating mutual relationship between various type of creatures-human beings, animals and others. He through His All Knowingness reveals the Vedas, embodying the basic principles of all Sciences. He is the Creator of even shining sun and moon and also of the planets like the earth and other heavenly bodies. He ordains spheres of special types oh happiness called the 'Svarga' as well as spheres of miseries called the 'Naraka'. The that Almighty God who bestows riches and true knowledge. He learned and righteous call 'Agni'. He alone and none else, is worthy of being adorned by all thoughtful human beings.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58